'अमर'

की

स्मृति में

कविता-सूची

सौन्दर्य

कल्पना

भावना

इतिवृत्त

रहस्यवाद

———— ——

परिचय

प्रत्येक साहित्य के भाव-विकास पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात होगा कि उसका वर्णन-क्रम बाहरी वस्तु-विन्यास से सदैव आन्तरिक भावनाओं की ओर हो रहा है। जैसे जैसे समाज और साहित्य सभ्य होता चलता है वैसे वैसे वह ऊपरी सतह से अपनी दृष्टि हटा कर भीतरी रहस्यों की तह तक पहुँच जाना चाहता है। साहित्य या कविता में पहले नगर और सेना के बाहरी वर्णन, पुष्प-वाटिका-वर्णन, या शरीर की शोभा के वर्णन की प्रधानता होती है। धीरे-धीरे नगर में रहने वाले लोगों के आन्तरिक मनोविज्ञान, सैनिक वीरों, उत्साह-भरे वाक्यों, पुष्प-वाटिका में फूलों के ऊपर गूंजने वाले भौंरों के गुंजार का अर्थ और शरीर की शोभा में लज्जा-भरे नेत्रों का उठते हुए भी न उठना—ऐसी अनेक बातें हैं जिनकी ओर कवि का ध्यान जाता है।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के 'कविता-कलाप' में ऐसी

कविताओं की संख्या बहुत अधिक है जिनमें बाह्य-वर्णन या ऊपरी वस्तुओं का निर्देश है। कुछ कविताएँ मनोविज्ञान की तह तक पहुँचना अवश्य चाहती हैं, परन्तु ऐसी कविताओं की संख्या कम है। 'कादम्बरी', 'अहल्या', 'परशुराम', 'केरल की तारा' जैसी कविताएँ बहुत हैं, और 'द्रौपदी-दुकूल', 'भीष्म-प्रतिज्ञा' या 'केशों की कथा' जैसी कविताएँ कम हैं।

द्विवेदी जी के बाद 'प्रसाद' जी ने इस आंतरिक भाव-जगत की खोज में बड़े मनोयोग से काम लिया। उनका 'आंसू' इस दिशा में सब से पहला और सब से सफल काव्य है। उनका यह भाव-संकेत हिन्दी में बड़े उत्साह से ग्रहण किया गया। भाषा तो द्विवेदी जी के समय में यथेष्ट परिष्कृत हो ही चुकी थी अब भावनाएँ भी उत्कृष्ट होने लगीं। इसी भावना-विकास में रहस्यवाद की छाया मिली जो आधुनिक हिन्दी-कविता के विकास में एक महत्वपूर्ण स्थिति है।

रहस्यवाद के सम्बन्ध में हिन्दी में बहुत भ्रांतियां रहीं। कोई 'वीणा के तार' या 'मूक वेदना' के व्यंग्य-भरे नामों से और कोई 'चल रे उड़के वाले, तू चल अनंत की ओर' वाक्यों से उसकी हँसी उड़ाते रहे। लेकिन वे यह न जान सके कि रहस्यवाद की भावना आज की नहीं, उस समय की है जब मनुष्य ने पहले-पहल अपने भौतिक जगत के ऊपर उठना सीखा था। रहस्यवाद कोई वाद नहीं है और न कोई सिद्धान्त ही। वह अपने आराध्य में लीन

हो जाने की अनुभूति है। उस अनुभूति में क्या होता है, क्या होने वाला है, इसे स्वयं साधक या कवि नहीं समझ सकता, जिस तरह प्रिय से मिलने पर सारी सोची हुई बातें भूल जाती हैं और ऐसी बातें आप से आप मन की सतह तक उठ आती हैं जिन्हें पहले सोचा भी नहीं था। अपने जीवन में भी आप को अनुभव होगा कि अपने प्रिय स्वजन से मिलने पर सोची हुई सारी शिकायतें, सारे उपालंभ आप भूल जाते हैं और आप क्या सोचने या समझने लगते हैं, यह आप स्वयं पहले नहीं सोच सके थे। प्रिय के चले जाने पर आप कहते हैं "इतने दिनों की सोची हुई बातें सब भूल गए और जो कहना चाहते थे उसका एक शब्द भी नहीं कह सके।" जब संसार के प्रिय के सामने ऐसी स्थिति हो जाती है तो इस संसार से परे अपनी वास्तविक सत्ता से मिलने पर क्या परिस्थिति हो जाती होगी इसके समझने की क्षमता संसार के मनोविज्ञान में नहीं है। इसीलिए रहस्यवाद की कविता कभी सोचकर नहीं लिखी जा सकती। वह तो अनुभूति है, आप से आप उठने वाली तरंग है।

अपने पवित्र चरणों में कुछ कविताएँ मुझ से भी इसी तरह की या इससे मिलती-जुलती बन पड़ी हैं। वे अपनी गहराई में कहाँ तक जा सकी हैं यह तो मैं किसी तरह कह ही नहीं सकता। आप के सामने कुछ कविताएँ रख रहा हूँ।

प्रियतम के समीप की एक छोटी-सी झाँकी मिलने पर मेरी भावनाएँ गा उठी हैं—

प्रिय, तुम भूले मैं क्या गाऊँ !
जिस ध्वनि में तुम बसे उसे जग के कण-कण में
क्या बिखराऊँ !

शब्दों के अधखुले द्वार से
अभिलाषाएँ निकल न पातीं ;
उच्छ्वासों के लघु-लघु पथ पर
इच्छाएँ चल कर थक जातीं।
आह, स्वप्न-संकेतों से मैं कैसे तुमको पास बुलाऊँ !
प्रिय, तुम भूले मैं क्या गाऊँ !

जुही-सुरभि की एक लहर से
निशा वह गई डूबे तारे,
अश्रु-बिंदु में डूब-डूब कर
दृग-तारे ये कभी न हारे !
अपने दुख की इस जागृति में तुम्हें जगा कर क्या
सुख पाऊँ !
प्रिय, तुम भूले मैं क्या गाऊँ !

संसार की रातें आती हैं, तारे निकलते हैं, डूबते हैं किंतु तुम्हारे वियोग में निकले हुए आंसू-रूपी तारे कभी निकलने से रुके नहीं और डूब कर भी नहीं डूबे। ये अभिलाषाएँ और इच्छाएँ शब्दों के अधखुले द्वार से निकल नहीं पातीं।

इसी प्रकार उस आराध्य के विरह में एक कविता बनी थी :—

भूल कर भी तुम न आए।
आंख के आंसू उमड़ कर आंख ही में हैं समाए।

सुरभि से शृङ्गार कर वह वायु
प्रिय - पथ में समाई।
अरुण कलियों ने स्वयं सज
आरती उर में सजाई।
वंदना कर पल्लवों ने नवल वंदनवार छाए। भूल०

हूँ असीम ससीम सुख से
सींच कर संसार सारा।
सांस की विरुदावली से
गा रहा हूँ यश तुम्हारा।
किन्तु तुमको कौन स्वर, स्वरकार! मेरे पास लाए? भूल०

संसार की समस्त शोभा तुम्हारा स्वागत कर रही है। मैं स्वयं अपनी सांस के राग से तुम्हारा स्वागत-गान गा रहा हूँ, न जाने किस स्वर से तुम खिंच कर मेरे पास आओगे, मेरे आराध्य, यह मैं नहीं जानता।

ऐसी ही एक कविता मैंने और लिखी। मैं अपने को उस अनन्त सत्ता का एक कण मानते हुए कह उठा हूँ—

एक दीपक किरण-कण हूँ।
धूम्र जिसके क्रोड़ में है,
उस अनल का हाथ हूँ मैं;
नव-प्रभा लेकर चला हूँ,
पर जलन के साथ हूँ मैं;
सिद्धि पाकर भी तपस्या-साधना का ज्वलित क्षण हूँ।
एक दीपक०

व्योम के उर में अगाध,
भरा हुआ है जो अंधेरा,
और जिसने विश्व को,
दो वार क्या, सौ वार घेरा;
उस तिमिर का नाश करने के लिए मैं अखिल प्रण हूँ।
एक दीपक०

शलभ को अमरत्व देकर,
प्रेम पर मरना सिखाया,
सूर्य का सन्देश लेकर,
रात्री के उर में समाया,
पर तुम्हारा स्नेह खोकर मैं तुम्हारी ही शरण हूँ।
एक दीपक०

माया के धूम को छिपाए हुए उस प्रकाश-ज्योति की मैं ऐसी किरण हूँ जिसके अन्तर में प्रभा तो है पर साथ ही साथ संसार की जलन भी है। किन्तु यह ज्योति ऐसी है जिससे संसार का अंधकार दूर हो सकता है। इन्द्रियों से पूर्ण इस शरीर से ही तो प्रेम की साधना होती है और इसलिए मैं अपनी शक्ति से इस संसार के भौतिकवाद में दिव्य ज्योति लेकर समाया हुआ हूँ। मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है कि मैं तुमसे मिलने योग्य हूँ या नहीं। लेकिन मैं मिलने के लिए ही चला आया हूँ और मिल कर रहूँगा!

रहस्यवाद की साधना बहुत ऊँची है।

कबीर कहते हैं—

डुबकी मारी समुद में, निकसा जाय अकास।
गगन मंडल में घर किया, हीरा पाया दास॥

संसार के समुद्र में डुबकी मार कर आकाश में निकलने

की शक्ति कितने साधकों में है ? फिर वर्तमान परिस्थितियों में साधना ही क्या ? किंतु कविता के पावन क्षेत्र में वासनाओं से रहित यदि आन्तरिक पवित्रता और स्वाभाविकता से आराध्य-मिलन और विरह के सुख या दुख का कुछ अनुभव कर सकूं तो मेरे लिए यही बहुत है। इसी लिए मैं कहता हूँ—

नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ आज अनश्वर गीत ?
जीवन की इस प्रथम हार में कैसे देखूँ जीत ?

साकेत
सोमवती अमावस्या, २००३] रामकुमार वर्मा

सौन्दर्य

सौन्दर्य

सौन्दर्य जीवन की विभूति है। विश्व ने मानव-जीवन को प्रेरणा देने के लिए जिस लक्ष्य-बिन्दु की कल्पना की है उसे ही सौन्दर्य का नाम दिया जाना चाहिए। यह लक्ष्य-बिन्दु विषमता की समस्त रेखाओं को समता की परिधि में बाँधकर एक ऐसे आलोक से जगमगाता है जो संसार की नश्वरता से भी धूमिल नहीं होता। नश्वरता की अनित्य निराशा में मानव विद्रोह करता है और उस विद्रोह में वह अपने चारों ओर अनायास विषमता का निर्माण करता है। किन्तु सृष्टि अपनी नियमित गति में उस विषमता को भी धीरे-धीरे समता का रूप देने का प्रयत्न करती है—जैसे वर्षा की क्रान्ति-कारिणी मैली नदी शरद में निर्मल हो जाती है। सौन्दर्य प्रकृति का स्वभाव है। पुष्प-राशि, निर्झरिणी, पर्वत-माला, चन्द्र की कला, उषा और संध्या, पक्षियों का कलरव इन सब में सौन्दर्य अपने चिर नवीन

अनुभावों से वर्तमान है। आकाश ने अपने सहस्र नयनों से पृथ्वी के इस सौन्दर्य को देखा है। क्या इतनी संख्या में मनुष्य की आँखें भी इस सौन्दर्य को देख सकेंगी ?

हार

शतदल

नीला आकाश

सुरभि

चन्द्रकिरण

विमलरजनी

मधुयामिनी

वसन्त

हार

सजाये हैं मैंने ये हार !
उषा-सम रंजित रुचिर प्रसून ;
शरद-बादल-सी कलियाँ श्वेत ,
व्योम-से पल्लव कोमल श्याम ;
सभी हारों में है समवेत ;

सजाये हैं मैंने ये हार !
प्रात की पीकर अनिल अपार ,
लता की हरी-हरी-सी गोद ;
भूल कर फूल रहे थे फूल ,
हार में सोये हैं सविनोद ,

सजाये हैं मैंने ये हार !
ओस जल में मुख धोकर मौन ;
विहंग का सुनकर कलरव-गान ,
कली ने अलि-अवली से प्रात ;
सरस स्वागत का पाया मान ,

सजाये हैं मैंने ये हार !
और पल्लव—पल्लव हैं बाल
सुकोमल है, मृदु हैं, सुकुमार ,
पवन ने उन्हें सरल शिशु जान
झुलाया है कितनी ही वार
सजाये हैं मैंने ये हार !

  

शतदल सजल सहास !
सलिल के सुखद स्वप्न साकार;
अमिट, विकसित; सस्मित सुकुमार,
विश्व के विहँसित पुलकित प्यार;
तरङ्गित तन के कितने पास!!

शतदल सजल सहास !
जगत के हे अभिनव आभास;
सुरभि है अविरत जीवित साँस,
रुचिर छवि है, यौवन है पास;
और है जीवन का उल्लास ॥

शतदल सजल सहास !
कौन हो तुम ज्योतित आकार !
पवन करता रहता परिचार,
सलिल लहरों के हाथ पसार,
मांगता है चिर- मिलन-विलास ॥
शतदल सजल सहास !

नीला आकाश

फैला है नीला आकाश ।
सुरभि, तुम्हें उर में भरने को
फैला है इतना आकाश ॥

तुम हो एक सांस सा सुखकर
नभ-मण्डल है एक शरीर ।
यह पृथ्वी मधुमय यौवन है
तुम हो उस यौवन की पीर ॥

पथ बतला देना तारक—
दीपक का दिखला नवल प्रकाश ।
सुरभि, तुम्हें उर में भरने को
मैं फैलूँगा बन आकाश ॥

❀ ❀ ❀

सुरभि

मेरे सुमनों की सुरभि अरी !
पंखड़ियों का द्वार खुला है
आ इस जग में मोद भरी ॥
भ्रमर भावना के पंखों पर कल प्रातः आया था ,
छू गुलाब का गाल गीत उसने मन भर गाया था ,
भागी तू समीर में, उससे
मन में इतनी व्यर्थ डरी ॥
पंख-व्यजन झलती आई थी चंचल तितली रानी ,
तेरे उर से लग कर जीवन की कह गई कहानी ,
उसकी सारी रूप - राशि
नभ में थी असफल हो बिखरी ॥
मैं आया हूँ आज लिये अपनी सांसों की माला ,
उसमें निज अस्तित्व मिला दे, मेरी कोमल बाला !
मेरे उर के स्पंदन में तू
झूले ओ प्रिय स्वर्ण-परी ॥

  

चन्द्र-किरण

यह चन्द्र-किरण भू पर आई।
साहस तो देखो नभ-वासिनि
पृथ्वी पर यह नव-छवि लाई।
एकाकीपन का लिए भार,
तम के प्रदेश को किया पार,
प्रति क्षण विस्तृत हो रेख-रूप,
कर दिया विमल तन तार-तार।
मेरे दृग में खोकर उसने
बोलो, क्या जीवन-निधि पाई? ॥ यह० ॥
तज नक्षत्रों से पूर्ण लोक,
आलोक छोड़, निज ज्योति रोक,
मेरी पृथ्वी, जो है मलीन,
जिसमें है पीड़ा, रुदन, शोक,
उसमें आने के हेतु न-जाने
क्यों इतनी यह ललचाई? ॥ यह० ॥

विमल रजनी

यह विमल रजनी तुम्हारी ।
विश्व-जागृति पर बनी है
आवरण ले शान्ति सारी ॥ यह०

मौन की निश्चल परिधि में
सो गए तरु-वृन्द सारे;
अवनि-वृद्धा की विवशता
देखते हैं तरुण तारे,
या गगन ने आरती सज
सब दिशाओं से उतारी ॥ यह०

प्रेम की श्यामा समाधि
विशाल भू पर स्थिर हुई है;
सूर्य का उत्ताप खोकर
वायु शीतल फिर हुई है।
या हमारी साँस तुमने
रजनि के तन में सँवारी ॥ यह०

*





मधु यामिनी

शून्य से उन्मुक्त कर
करुणा-कणों की यामिनी।
भावना की मुक्ति मुझको
दे सकोगी स्वामिनी ?

वायु की सांसें बिखर कर
पा रही निर्वाण हैं :
यह सुरभि भी वायु की है
बन रही अनुगामिनी।

यदि मुझे आभास देते—
हो कि बंधन सत्य है,
घोर घन प्राचीर में तो
क्यों व्यथित है दामिनी ?

दो मुझे वह सत्य, जो
संसार का शासन करे
चिर दुखों की रात्रि भी
मुझको बने मधु यामिनी।

यह वसन्त आया।

कलियों ने अपना अवगुंठन
खुला हुआ पाया।
अपना स्वर वितरन कर उन
श्यामा प्रियंगु-कुंजों को,
भ्रमरों ने मेरे जीवन का
एक गान गाया।

क्षितिज परिधि में नव किरणों क
भर कर मुकुलित मा।,
रवि पृथ्वी को जीवन का
उपहार - हार लाया।

पल्लव झुक कर रक्षित रखते
हैं सुमनों की शोभा;
उसी भाँति मुझ पर हो चिर
नव जीवन की छाया।
यह वसन्त आया।

कल्पना

कल्पना में मनुष्य की अभिलाषा है। वह अपने चारों ओर की परिस्थितियों में ऐसे संसार की सृष्टि करना चाहता है जो उसकी अभिलाषा के अनुरूप हो। इस प्रकार कल्पना संसार के भीतर एक नवीन संसार बसाती है जिसमें उसकी आकांक्षाएँ अपने सुनहले जीवन से समन्वित होकर निवास करती हैं। जिस प्रकार सृष्टि ब्रह्म के चिन्तन में निवास करती है उसी प्रकार कल्पना की सृष्टि मनुष्य के जीवन में पोषित होती है। अतः कल्पना में लीन कवि सृष्टा है। यह कल्पना जीवन के सत्य एवं प्रकृति के नियमों से भी सम्बन्ध रखती है, अन्यथा कल्पना किसी विक्षिप्त की चिन्ता हो जाती है जिसमें कार्य-कारण का कोई सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार कल्पना जीवन के समानान्तर बहने वाली एक नूतन प्रकृति की असीम कार्य-शक्ति है। संसार में चिन्तन को क्रिया का रूप देकर कल्पना चिरन्तन सत्य की अभिभाविका है।

यदि प्रभात तक कोई आकर,
तुमसे हाय! न मोल करे,
तो फूलों पर ओस-रूप में
बिखरा देना सब गजरे।

  

एकान्त गान

अरे, निर्जन वन के निर्मल निर्भर !
इस एकान्त प्रान्त प्राङ्गण में
किसे सुनाते सुमधुर स्वर ?

अपना ऊँचा स्थान त्याग कर,
क्यों करते हो अधः पतन ?
कौन तुम्हारा वह प्रेमी है,
जिसे खोजते हो वन-वन ?

विरह-व्यथा में अश्रु बहा कर,
जल-मय कर डाला सब तन।
क्या धोने को चले स्वयं
अविदित प्रेमी के पद-रज-कन ?

लघु-पाषाणों के टुकड़े भी,
तुमको देते हैं ठोकर।
क्षण भर ही विचलित होकर
कम्पित होते अति, गति खोकर।

लघु लहरों के कम्पित कर से,
करते उत्सुक अभिनन्दन।
कौन तुम्हें पथ बतलाता है,
मौन खड़े हैं सब तरु-गन।

अविचल चल, जल का छल-छल,
गिरि पर गिर-गिर कर कल कल स्वर।
पल-पल में थल-थल पर गूँजे
ध्वनित करे अम्बर निर्झर!

  

यह अन्तराल

अन्धकार में वृत्तों के कङ्काल।
उनसे भी भीषण है मेरे कृश भावों का अन्तराल।
सूनापन था मानो पृथ्वी पर आया आकाश श्याम;
खद्योतों ने तारों के अनुरूप दिखाये विन्दु-ज्वाल॥
पात पतन के पहले झंझा में झूमा दिन-रात हाय,
एक झकोरे में छिपकर आया था मानो क्रूर काल।
प्रलयंकर शिव के दिकूपट में घन का विखरा श्याम दाग़;
उससे भी मैला है मेरे जीवन का संकीर्ण भाल।
वायु वेग से विखरे हैं पेड़ों में वृन्तों के समूह;
अपने स्वजनों को स्व-अंक से तरु क्यों हाय, रहा उछाल?
अन्धकार में हुआ सर्प-दंशित-सा जग निश्चेष्ट मौन;
कभी किसी को डसे न मेरे दुख-तम का दुर्धर्ष व्याल।
सुमनो, कलियो, सुनो···वायु के वेग सुनो, बस एकबार;
शिशिर-रूप में आना, शीतल है मेरा यह अन्तराल।

❀

❀

अंतिम संसार

तरुवर के ओ पीले पात !
किस आशा के तन्तु सम्हाले रहते हैं दिन रात ?
रात हो या कि प्रभात ॥
पतले एक हाथ से पकड़े हो तरुवर का गात ।
अन्य तुम्हारे स्वजन,
हरे रंगों का ले परिधान ।
हँसते हैं पीलेपन पर क्या,
मर मर मर कर गान ?
सुनते हो चुपचाप,
अन्य पत्तों का यह अभिशाप ।
उनका है आनन्द तुम्हारा,
यह विषमय संताप ॥
गिर जाना भू पर
समीर में हिल-डुल कर इस बार ;
दिखला देना पत्तों को,
उनका अंतिम संसार ॥

शिशिर

समय की शीतल सांस
यही तुम्हारे जीवन का
पहला दिन, पहली रात,
उसी समय तुमने छीने
जीवन तरुवर के पात

हँसते हो, छूते हो जग के
सब सूखे कंकाल
शिशुपन की क्रीडा में
जीवन का यह रूप कराल !

वृद्ध सो रहा है,
तेरा ही स्वप्न रहा है देख,
तीन पंक्तियों में मस्तक पर
है आशा का लेख,
वह आशा जो जर्जरपन में
ले छलना का रूप
कंकालों से हँसती रहती
तेरे ही अनुरूप

तेरा जीवन है जग के
फूलों का जीवन-नाश
तेरी क्रीड़ा के कारण ही
शून्य हुआ आकाश
मेरा जीवन तो तुझसे भी
शीतल है ओ क्रूर !
क्यों रहता है फिर उससे तू
डर कर इतनी दूर ?
जीवन सुख है वर्षा की
सरिता का वारि-विलास
उठकर पत्थर से ठोकर
खाकर करता उपहास
उस सुख से तेरे दुख में
मिलती है अधिक मिठास
तुझमें ही मेरा वसंत है
तुझमें अमर विकास
समय की शीतल सांस

  

मैं

मैं आया बन संध्या अपार।
नभ, खोलो तारक द्वार-द्वार ॥
यह है निशीथ मुझमें विलीन;
प्रतिपल सूनेपन से नवीन,
हो रही शीत स-समीर पीन,
जग जड़ है मानो शिला-भार।
नभ, खोलो तारक द्वार-द्वार ॥
तुममें प्रकाश कितना अपार!
रेखा-पथ से चू वार-वार !!
इन प्राणों में कर ले विहार;
तुम वीणा, मैं हूँ स्वरित तार।
नभ, खोलो तारक द्वार-द्वार ॥
पश्चिम में बन कर सूत्रधार;
साकार दिवस कर निराकार,
रंगों में हँस कर ऐ अपार!
जग-जीवन करते दिवस चार।
नभ, खोलो तारक द्वार-द्वार ॥

मेघ-मण्डल

मेघों का यह मण्डल अपार !
जिसमें पड़ कर तम एक बार ही
कर उठता है चीत्कार !!

ये काले-काले भाग्य-अंक
नभ के जीवन में लिखे हाय !!
यह अश्रु-बिंदु-सी सरल बूँद भी
आज बनी है निराधार !!

यह पूर्व दिशा जो थी प्रकाश की—
जननी छविमय प्रभापूर्ण,
निज मृत शिशु पर रख नमित माथ
बिखराती घन केशान्धकार !!

जीवन है सांसों का छोटे छोटे—
भागों में चिर विलाप,
अब भार-रूप हो रही मुझे
मेरी आंखों की अश्रु-धार !!

मेघ-मण्डल

वर्षा है, नभ औ धरा बीच
मिलने का है क्या बँधा तार ?
नभ में कैसा रोमांच हुआ
बिजली का विचलित वेष धार !!

सुख दुख के चरणों से विशाल
करता है सम्मुख नृत्य कौन ?
मैं भल रहा हूँ; मेघ आज
रोकर कैसे है निराकार !!





जीवन-कथा

जीवन की एक कहानी है।
प्रकृति आज माता बन कर
कहती यह कठिन कहानी है॥
एक मनोहर इंद्रधनुष फैला है नील गगन में;
क्या वैभव की लहर बही है वर्षा के जीवन में?
ये बादल हैं झुके हुए क्या प्रभु के पद-वन्दन में?
एक स्वप्न की रेखा है किरणों के नव जीवन में?
नश्वरता भू पर भिक्षुक है
पर नभ में वह रानी है॥ जीवन०
अविरल सांसों के पथ पर, प्रिय निद्रा के नर्तन में;
निशा विभाजित हो जाती है, तारों के कन-कन में,
किन्तु उषा के उल्का से, इस नीरव स्वर्ग-सदन में,
दिन की आग आह, लग जाती यह छल परिवर्तन में!
इस रहस्य को समझ, सुमन सूखा—
वह मुझसे ज्ञानी है॥ जीवन०

  

मैं और तुम

मैं तुम्हारे पास हूँ।
तुम सुमन हो, मैं तुम्हारी
मंद मुग्ध सुवास हूँ।

चन्द्रिका की ज्योति में जब
व्योम हँसता है अहा!
तब तुम्हारे वायु-स्वर में
मैं प्रकृति की सांस हूँ।

सो रहा संसार जब
निज सांस की शय्या बना,
तब सजग रह तारिका-की
ज्योति में उल्लास हूँ।

इस जगत में मौन रहना
मृत्यु का संवाद है;
सुख तथा आनन्द के
अधिवास में मधुमास हूँ।

  

वीचि-विलास

यह जीवन वीचि-विलास हुआ।
फेनिल के अस्फुट अधरों में
कलकल का कोमल हास हुआ।
तरुराजि बिम्ब पल-पल कम्पित,
उर का स्पन्दन है बार-बार;
लहरों की विस्तृत परिधि मंजु
आकांक्षा बढ़ती है अपार।
तरलित हिलोर का ललित नृत्य
अविरल-अविरल हो पास हुआ।
मेरे सुख-शशि की रुचिर रश्मि
आलोकित कर दो बार-बार;
जीवन हो नव-जीवन स्वरूप
उज्ज्वल मंजुल होकर अपार।
मैं आज कह सकूँ मेरा मन
अब मेरा ही आवास हुआ!
यह जीवन वीचि-विलास हुआ।

  

भा व ना

नीरसता में भी सरसता का संचार करती है। वस्तुतः भावना मनो-विज्ञान के क्षेत्र में जागरण का इंद्रधनुष खींच कर सौन्दर्य का संदेश देती रहती है।

अशान्त

नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ,
आज अनश्वर गीत?
जीवन की इस प्रथम हार में,
कैसे देखूँ जीत ?
उषा अभी सुकुमार, क्षणों में—
होगी वही स-तेज,
लता बनेगी ओस-बिन्दु की
करुण मृत्यु की सेज;

कह सकता है कौन, देखता हूँ मैं भी चुपचाप।
किसका गायन बने न जाने मेरे प्रति अभिशाप !

क्या है अन्तिम लक्ष्य—
निराशा के पथ का ?-अज्ञात !
दिन को क्यों लपेट लेती है
श्याम वस्त्र में रात ?
और, काँच के टुकड़े बिखरा—
कर क्यों पथ के बीच,

नीरस
विज्ञान
देती र

अशान्त

नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ,
आज अनश्वर गीत?
जीवन की इस प्रथम हार में,
कैसे देखूँ जीत ?
उषा अभी सुकुमार, क्षणों में—
होगी वही स-तेज,
लता बनेगी ओस-बिन्दु की
करुण मृत्यु की सेज;
कह सकता है कौन, देखता हूँ मैं भी चुपचाप।
किसका गायन बने न जाने मेरे प्रति अभिशाप!
क्या है अन्तिम लक्ष्य—
निराशा के पथ का ?-अज्ञात!
दिन को क्यों लपेट लेती है
श्याम वस्त्र में रात ?
और, काँच के टुकड़े बिखरा—
कर क्यों पथ के बीच,

भूले हुए पथिक शशिको दुख
देता है नभ नीच ?

यही निराशामय उलझन है क्या माया का जाल ?
यहाँ लता में लिपटा रहता छिपकर भीषण व्याल।

देख रहा हूँ बहुत दूर पर,
शान्ति-रश्मि की रेख;
उस प्रकाश से मैं अशान्ति-तम—
ही सकता हूँ देख;
काँप रही स्वर-अनिल-लहर
रह-रह कर अधिक सरोष;
डर कर निरपराध मन अपने—
ही को देता दोष।

कैसा है अन्याय ? न्याय का स्वप्न देखना पाप!
मेरा ही आनन्द बन रहा, मेरा ही संताप।

हास्य कहाँ है ? उसमें तो है,
रोदन का परिणाम;

प्रेम कहाँ है? घृणा उसी में
करती है विश्राम;
दया कहाँ है? कुछ क्षण को
विश्राम ले रहा रोष;
पुण्य कहां है? छद्म वेश
लेकर आया है दोष।

धूल हाय! बनने ही को, खिलता है फूल अनूप।
वह विकास है मुरझा जाने ही का पहला रूप।

मेरे दुख में प्रकृति न देती
क्षण भर मेरा साथ;
उठा शून्य में रह जाता है,
मेरा भिक्षुक-हाथ;
मेरे निकट शिलाएँ, पाकर
मेरा श्वास-प्रवाह;
बड़ी देर तक गुंजित करतीं—
रहतीं मेरी आह;

'मर-मर' शब्दों में हँसकर, पत्ते हो जाते मौन।
भूल रहा हूँ स्वयं, इस समय मैं हूँ जग में कौन?

वह सरिता है—चली जा रही—
है चंचल अविराम;
थकी हुई लहरों को देते,
दोनों तट विश्राम;
मैं भी तो चलता रहता हूँ
निशि-दिन आठों याम;
नहीं सुना मेरे भावों ने
शान्ति-शान्ति का नाम;

लहरों को अपने अंगों में तट कर लेता लीन।
लीन करेगा कौन? अरे, यह मेरा हृदय मलीन!

  

कंकाल

क्या शरीर है ? शुष्क धूल का—
थोड़ा सा छवि-जाल,
इस छवि में ही छिपा हुआ है
वह भीषण कंकाल !
उस पर इतना गर्व ? अरे,
इतने गौरव का गान ?
थोड़ी सी मदिरा, है उस पर,
सीखा है बलिदान !

मदमाती आँखों वाले ओ ! ठहर अरे नादान !
एक फूल की माला है, उस पर इतना अभिमान !

इस यौवन के इन्द्र-धनुष में
भरा वासना रंग,
काले बादल की छाया में
सजता है यह ढंग;
और उमंगों में भूला है,
बन कर एक उमंग,

एक टूटता स्वप्न आँख में
कहता उसे 'अनंग'—

वह 'अनंग' जो धूल कणों में भरता है उन्माद,
जर्जरपन में ले आता है नव यौवन की याद।

और (याद आया अब)—
मृग-नयनी का नयन-विलास;
हँसती और लजाती थी—
चितवन कानों के पास;
कलित कपोलों की कोरों में—
भर ऊषा का रंग,
चंचल तीर चला चितवन का,
करती थी भ्रू-भं

मैंने देखा था उसमें, गिरते-फूलों का हास
संध्या के काले अम्बर में मिटता अरुण विकास

दूर ! दूर !! मत भरो कान में
वह मतवाला राग,
यही चाहते हो, मैं कर लूँ

इस जग से अनुराग ?
गिरते हुए फूल से कर लूँ
क्या अपना शृंगार ?
करने को कहते हो मुझ से,
निश्चल शव से प्यार ?

गिन डालूँ कितनी आहों में अपने मन के भाव ?
पथराई आँखों से कैसे देखूँ विष का स्राव ?

अरे, पुण्य की भाषा में तुम
क्यों कहते हो पाप ?
क्षणिक सुखों की नीवों पर
क्यों उठा रहे सन्ताप ?
सुमन-रंग से किस आशा पर
करते अमर विहार ?
ओस कणों में देख रहे—
सारे नभ का शृंगार ?

प्यार-प्यार क्यों प्यार कर रहे नश्वरता से प्यार ?
यहाँ जीत में छिपी हुई है इस जीवन की हार ।

मृत्यु वही है जिसमें होती,
जीवित क्षण की हार;
वे ही क्षण क्यों भाग रहे हैं,
वर्तमान के पार?
मेरे आगे ही, मेरे
जीवन का नाश-विलास,
झाँक शुष्कता रही चोर-सी
हृदय-सुमन के पास;
जीवन-आभा बनती जाती दिन-दिन अधिक मलीन,
अंधकार में भी बनता हूँ मैं लोचन से हीन।
भूल रहा हूँ पाकर स्मृति की
चंचल एक हिलोर,
देख रहा हूँ मैं जीवन के
किसी दूसरी ओर;
हाँ, वह यौवन-लीला करती
जीवन-सुमन विहार,
मादकता में धूल कणों से—
भी करती थी प्यार;

शुष्क पत्तियों से करती थी आलिंगन का हाव ;
मतवाले बन कर आते थे, मन के नीरस भाव।
काले भावों की रजनी में
आशा का अभिसार,
मैंने छिप कर देखा था,
देखा था कितनी बार !
उनका आना और समुत्सुक—
मेरे मन का प्यार,
दोनों भाव बना देते थे
लज्जित लोचन चार,
किन्तु, मुझे क्या मिलता था ? क्या बतला दूँ उपहार ?
अश्रुभरी हिचकी में डूबा-सा जीवन-शृंगार।
उत्सुकता के बदले में यह
भीषण अत्याचार।
घृणा, घृणा शत-जिह्वा से
डसती थी बारम्बार ;
आँखों की मदिरा का बन जाना
आँसू की धार,

बाहु-पाश का शक्ति-हीन हो
गिरना धनुषाकार;
यह था क्या उपहार, अरे इस जीवन का उपहार!
फूल-रूप क्यों रखता है यह धूल-रूप संसार?

छविमय कहते हो जिसको
जिसमें है रूप अपार,
अरे! भरा है उसमें कितने,
पापों का संसार!
पहिन रहे हो हार,
इसी में भूल रही है हार;
पुण्य मान कर क्यों करते हो,
इन पापों से प्यार
मुझे न छूना जतलाओ मत अपना झूठा प्यार
धूल समझ कर छोड़ चुका हूँ यह कलुषित संसार

  

अन्त

किन भीगी आँखों की पलकों—
में करती है वास ?
किन आँसू की बूँदों से
तेरी बुझती है प्यास ?
अरी वेदने ! सिखलाया है
किसने राग विहाग ?
जला रही आकाश सभी, ले
पूर्व दिशा की आग।
क्यों करने आई है मुझसे, चिर संचित अनुराग ?
ऐ अनन्त यौवन वाली ! तू बार-बार मत जाग।
मेरा हृदय भग्न हैं उसके
टूटे हैं सब द्वार;
भाग गया है उससे
रोका-हुआ-अतिथि-सा प्यार;
वृद्धा आशा के जीवन के—
लघु दिन हैं दो चार;

नित्य निराशा के विष से मैं
करता हूँ उपचार !

पड़ा हुआ है मृत-सा भू पर, जीवन-दीप-प्रकाश।
अरी वेदने! बिखर रहा है उस पर तेरा हास !!

  

विसरण

मैं भूल गया यह कठिन राह।
इस ओर एक चीत्कार उठा, उस ओर एक भीषण कराह॥
मैं भूल गया यह कठिन राह।

कितने दुख, बन कर विकल साँस
भरते हैं मुझ में बार बार।
वेदना हृदय बन तड़प रही
रह-रह कर करती है प्रहार,
यह निर्झर— मेरे ही समान
किस व्याकुल की है अश्रु-धार!
देखो, यह मुरझा गया फूल
जिसको कल मैंने किया प्यार।
रवि शशि ये बहते चले कहाँ, यह कैसा है भीषण प्रवाह!!
मैं भूल गया यह कठिन राह।

किसने मरोड़ डाला, बादल
जो सजा हुआ था सजल चीर!

केवल पल पर में दिया हाय
किस ने विद्युत का हृदय चीर !!
इतना विस्तृत होने पर भी
क्यों बहा रहा नभ अश्रु-नीर ?
यह कौन व्यथा है जिस कारण
है सिसक रहा तरु में समीर !!
इस विकल विश्व में भी बोलो, क्यों मेरे मन में उठी चाह ?
मैं भूल गया यह कठिन राह ।

वारिधि के मुख में रखी हुई
यह लघु पृथ्वी है एक ग्रास,
जिसमें रोदन है कभी, या कि
रोदन के स्वर में अट्टहास,
है जहाँ मृत्यु ही शान्ति और
जीवन है करुणामय प्रवास;
वय के प्याले में क्षण क्षण के कण
बढ़ा रहे हैं अधिक प्यास ।
दो बूँदों में ही जहाँ समझ पड़ती सागर की अगम थाह ॥
मैं भूल गया यह कठिन राह ।

यह नव बाला है, नारि-वेश—
रख कर आया है क्या वसन्त ?
जिस की चितवन से पंच बाण
निकला करते हैं बन अनन्त,
जिसकी करुणा की दृष्टि विश्व—
संचालित कर देती तुरन्त;
उसके जीवन का एक बार के
क्षुद्र प्रणय में व्यथित 'अन्त।'

यह छल है, निश्चय छल ही है, मैं कैसे समझूँ इसे आह !!
मैं भूल गया यह कठिन राह।

रजनी का सूनापन विलोक,
हँस पड़ा पूर्व में चपल प्रात;
यह वैभव का उत्पात देख
दिन का विनाश कर जगी रात,
यह प्रतिहिंसा इस ओर और
उस ओर विषम विपरीत वात;
नभ छूने को पर्वत-स्वरूप
है उठा धरा का पुलक गात।

है एक साँस में प्रेम दूसरी साँस दे रही विषम दाह॥
मैं भूल गया यह कठिन राह।

ओसों का हँसता बाल-रूप
यह किसका है छविमय विलास ?
विहगों के कण्ठों में स-मोद
यह कौन भर रहा है मिठास ?

संध्या के रंगों में मलीन
यह कौन हो रहा है उदास ?
मेरी उच्छ्वासों के समीप
कर रहा कौन छिप कर निवास ?

अब किसी ओर चीत्कार न हो, मैं कहूँ न अब दुख से कराह
मैं भूल गया यह कठिन राह !

  

चंचल जीवन

म्हारा है चंचल जीवन

लोल लहरो ! ठहरो इस बार ,
यहाँ है उच्छृङ्खल जीवन ।

वायु की आई एक हिलोर
वहीं इस ओर—वहीं उस ओर
तरल तन और सरल मन हाय !
जगत का नियमित संचालन ।

सजाओ मेरी छवि से वारि
कलित सुकुमारि ! ललित सुकुमारि !
आज तन्मय हो तनमय रूप ,
न हो उर में कोई कम्पन ,
तुम्हारा है चंचल जीवन

  

याचना

उज्ज्वल तारक-माला मेरी !
दे दो मुझे प्रकाश दिव्य
ओ उज्ज्वल तारक-माला मेरी !

ऊँचे नीचे उड़-उड़ कर है खद्योतों का विकल उजाला
अपनी छवि से पथ बतला दो
दिशा-भ्रान्तियाँ हैं बहुतेरी !
उज्ज्वल तारक-माला मेरी !

दो हाथों से रुक न सकेंगी जग-सागर की विषम हिलोरें
निर्बल तन है और बढ़ी है
चिन्ता की भय-पूर्ण अँधेरी।
उज्ज्वल तारक-माला मेरी !

अन्धकार की घोर गुफ़ा में यह जग नहीं दृष्टि आता है
मैं भी खो जाऊँगा उसमें
यदि तुमने की कुछ भी देरी।
उज्ज्वल तारक-माला मेरी।

  

जीवन-स्रोत

ओ प्रवाहिनी ! रुक जा, ओ जीवन प्रवाहिनी ! रुक जा।
शान्त, क्या न है श्रान्त ? प्रान्त एकान्त भयानक निर्जन ?
सुन पड़ता चीत्कार और क्रन्दन का कलुषित कम्पन
प्रतिध्वनि को ले वायु, झूमता ही रहता है वन वन
एक भयानक शब्द उसी का प्रतिध्वनि से परिवर्तन
यह विषाद का सिन्धु नहीं है तेरा उज्ज्वल जीवन।
ओ सुहासिनी ! रुक जा, ओ जीवन प्रवाहिनी ! रुक जा।

नीरव-चादर में कर्कश स्वर खिंचा छिद्र बन जर्जर,
तरु का पीला पात, बुझा-सा जिसका जीवन नश्वर।
गिरा, आह ! तेरे प्रवाह के चचंल परिवर्तन पर
मन्द स्वरों में हँसे हरे पल्लव पल-पल मरमर कर
अरी, झुला तो ले उस शव को, लहर लहर पर पल भर,
ओ अभागिनी ! रुक जा, ओ जीवन प्रवाहिनी ! रुक जा।

उस उदास संध्या का मेरे मन से पुनः निकलना;
तेरी लहरों का वृक्षों की छवि मरोड़ कर चलना,

तेरे दर्पण में पश्चिम नभ की आशा का जलना
तेरे अंचल में तारक-शिशुओं का सिहर मचलना
यह सब देखा, एक बार अब तो इस बार, सम्हल जा ?
ओ विहारिणी ! रुक जा, ओ जीवन प्रवाहिनी ! रुक जा ।

जो तुझमें है स्वर्ण-रेख, वह बादल की है माया;
तेरा यह वसन्त है, केवल एक शिशिर की छाया,
तेरी एक लहर में यद्यपि अविदित नृत्य समाया;
पर क्या वह स्थिर, है क्या तूने तत्त्व कभी यह पाया,
सुन ले, तेरी लहरों ने संगीत यही तो गाया ?
ओ विनोदिनी ! रुक जा, ओ जीवन प्रवाहिनी ! रुक जा ।

मेरी कविता की धारा तो तुझसे भी है चंचल
मेरी इच्छा तेरी लहरों से भी होगी उज्ज्वल
अपने इस अगाध जल में, जो रटता रहता कलकल
ज़रा मिला ले प्रेम भरे, मेरे आँसू का कुछ जल
यह अनन्त का प्रेम, सदा ही सरिते ! होगा निर्मल
ओ तरंगिनी ! रुक जा, ओ जीवन प्रवाहिनी ! रुक जा ।

  

अनन्त स्मृति

कवि, मेरा सूखा-सा जीवन,
रहने दो तुम सूना
रहो दूर, मेरे सुख दुख की,
स्मृतियाँ तुम मत छूना
रंगों से मत भरो चित्र,
धुँधली रहने दो रेखा
मेरे सूखे-से थल में
किसने गंगा-जल देखा ?
गीत-विहँग क्यों उड़े अभी है मौन-अँधेरा मेरा
हाय, न जाने कहाँ सो रहा स्मृति-संगीत-सवेरा !

ओसों के अक्षर से अंकित
कर दूँ व्यथा-कहानी
उसमें होगा मेरी आँखों
के मोती का पानी
उसे न छूना रह जावेगी
मेरी कथा अधूरी

कैसे पार करूँगी फिर मैं
हृदय-अपरिचित दूरी ?
सुख की नहीं, किन्तु दुख ही की बनी रहूँगी रानी
मेरे मन ही में रहने दो मेरी करुण-कहानी !

अंधकार का अम्बर पहने,
रात बिता दूँ सारी
दीप नहीं तारक-प्रकाश में,
खोजूँ स्मृति-निधि न्यारी
ओस-सदृश अवनी पर बिखरा—
कर यह यौवन सारा
किसी किरण के हाथ समर्पित
कर दूँ जीवन प्यारा—
तब तक यह सूखा-सा जीवन रहने दो तुम सूना।
रहो दूर, मेरे सुख-दुख की स्मृतियाँ तुम मत छूना॥

* * *

प्रण

मैं आज बनूँगा जलद-जाल।
मेरी करुणा का वारि सींचता रहे अवनि का अन्तराल॥
नभ के नीरस मन में महान्
बन सरस भावना के समान।
मैं पृथ्वी का उच्छ्वास-पूर्ण—
परिचय दूँ बन कर अश्रु-माल॥
हा! यहाँ सदा सुख के समीप
दुख छिप कर करता है निवास।
मैं दिखा सकूँगा हृदय चीर
रस मय उर में है चपल ज्वाल।
अपने नव तन को बार-बार
नभ में फैला दूँ मैं सहास।
यह आत्म-समर्पण करे किन्तु
मेरे जग का जीवन रसाल॥
मैं आज बनूँगा जलद-जाल।

*　　*　　*

समीरण

समीरण, धीरे से बह जाओ।
मैं क्या हूँ, इन कलियों के
. कानों में यह कह जाओ॥
वे विकसित होकर जग को
देंगी सुख सौरभ-भार;
किरणें हिम-कण के भीतर
होंगी ज्योतित सुकुमार;
तृण-तृण ले लेंगे उज्ज्वलता
का नूतन परिधान;
विहगों को होगा अपने
मधुमय कण्ठों का ज्ञान,
इस जीवन में साँस-रूप हो
कुछ क्षण को रह जाओ।
समीरण, धीरे से बह जाओ॥

* * *

प्रश्न

क्या लिखते हो खींच खींच
विद्युत की उज्ज्वल रेखा ?
मैंने तो नभ को केवल
पृथ्वी पर रोते देखा ॥
बादल के तिरछे तन को स्थिर
मैंने कभी न पाया।
प्रातः मैं भी दौड़ गई
संध्या की काली छाया ॥
जीवन के पहले ही क्षण में कैसा अन्तिम क्षण है !
बोलो, क्या मेरे जीवन में छिपा मृत्यु का कण है !!

  

कोकिल-स्वर

मैं खोज रहा हूँ कोकिल-स्वर।
बतला दो मेरे नील व्योम!
मैं इस संसृति से हूँ कातर॥
कितने तरु का उर सज्जित कर;
मधु-माधव का, मन में, मधु भर,
वह बोल उठी वंशी-ध्वनि सी—
हो गए एक अवनी-अंबर॥
प्रिय पीड़ा को भी कर सुखकर;
पथहीन व्योम में रहा विचर,
ऐसे कोकिल-स्वर के पाने को;
व्याकुल है मेरा अंतर।
मैं खोज रहा हूँ कोकिल-स्वर॥

* * *

किसलय

तरु के छोटे-से हे किसलय !
तरु उर में ही रहो छिपे
इच्छा के रूप रहो छविमय ॥
जग कितना भीषण है इसमें,
घृणा, वेदना, भीषण, भय,
जीवन क्या है ? पीड़ा का—
संघर्ष और दुख का अभिनय ॥
एक उमंग रहो पृथ्वी की—
सृजन शक्ति के मधु-संचय !
आज प्रकृति का सब रहस्य
तुमको देगा अपना परिचय ॥
छोटे-से हे किसलय !

तरी

निस्पन्द तरी, अति मन्द तरी !
चल अविचल जल कल-कल पर
गुंजित कर गति की लघु लहरी ॥ निस्पन्द०

साँसों के दो पतवार चपल;
सम्मुख लाते हैं नव-नव पल,
अविदित भविष्य की आशंका की
छाया है कितनी गहरी ॥ निस्पन्द०

मेरी करुणा का मृदु सावन;
पुलकित कर दे तन-तन मन-मन,
विस्तृत नभ की व्याकुल विद्युत
पल पल बन जाती है प्रहरी ॥ निस्पन्द०

* * *

करुणा की छाया

करुणा की आई छाया।
कोकिल ने कोमल स्वर भर, कुंजों कुंजों में गाया।
जब विश्व व्यथित था, तुमने अपना सन्देश सुनाया;
तरु के सूखे से तन में नव-जीवन बनकर आया।

मैंने साँसों पर जीवन, कितनी ही बार झुलाया,
पर इतने रूपों में भी, क्या मैंने तुमको पाया?
यह जीवन तो छाया है, केवल सुख दुख की छाया;
मुझको निर्मित कर तुमने आँसू का रूप बनाया।
करुणा की आई छाया।

जीवन

मौन झींगुर उस अँधेरी रात का हैं गान करते ;
और तारे क्या परस्पर देख कर पहिचान करते ?
सुमन अपने रूप का, अपनी सुरभि का दान करते ;
और अनिल-अनंग अविदित रूप से मधु-पान करते।

मैं उठा हूँ जाग, यह जग
मुग्ध सा क्यों रह गया है ?
एक ही जीवन उमड़ कर
मृत्यु पर ज्यों वह गया है ?

यह निशा काली—पवन ने साँस ली मानो ठहर कर ;
पंखकी ध्वनि ! पक्षि-शावक का ध्वनित टूटा हुआ स्वर।
और पत्ते का पतन ! जो अचर से कुछ हो गया चर ;
देख कर मैंने कहा; अः यह निशा का मौन अम्बर।

शान्त है, जैसे बना है साधु—
संत निरीह निश्छल ;
किन्तु कितने भाग्य इसने
कर दिए हैं नष्ट, निर्बल !

यह जगत है ! शान्ति में गोपित किए हैं पाप प्रतिक्षण;
मृत्यु की छाया निशा-सी छू रही अविराम कण-कण।
हाथ को निर्बल बनाने के लिए है स्वर्ण-कंकण;
दे चुका तम-मृत्यु को नभ तारिका-जीवन समर्पण।
पतित पल्लव की तरह पल में
कभी तुम टूट जाओ;
दुख सहो तो शान्ति, या सुख
में सदैव अशान्ति पाओ।

रहस्य

जीवन ही करुण कथा है।
शब्दों में सुन्दरता है,
अर्थों में भरी व्यथा है!

फूलों की मत्त सुरभि-सी
जो फूलों से हट जावे।
ऐसा यह लघु जीवन है
जो जीते-जी घट जावे।

जिसकी केवल स्मृति रह कर
मन में चुभती रहती है।
दृग के कोमल कोने में
करुणा-धारा बहती है।

केवल अभिनय ही तो है
जीवन है छोटा अभिनय;
तस्कर-सा जिस में विचलित
साहस के पीछे है भय।

रहस्य

यह जीवन समय-भवन में
टूटा-सा टेढ़ा जाला।
जो रेशम-सा दिखता है
पर जीर्ण अन्त में काला।

*

संकेत

एक प्रश्न

घटा घुमड़ कर आई।
घोर घनी घहरी, घिर कर भी
पूरी बरस न पाई!
नभ की रंग-भूमि पर उसने
विद्युत् में नर्तन कर,
हँसकर मुक्तावलि की माला
बूँद - बूँद बरसाई!
उसे ज्ञात होगया किन्तु,
मिथ्या है नभ में रहना;
इस पृथ्वी पर गिर कर उसने
मेरी - सी गति पाई।
शांति नहीं है इस बंधन में
किसी भाँति रह कर भी;
आज घटा ने रो - रो कर यह
दारुण कथा सुनाई।

एक प्रश्न

प्रभो ! अश्रु क्यों दिए आँख को
क्यों करुणा इस मन को ;
सुलझाने के बदले तुमने
मेरी गति उलझाई !!

*

*

*

आँसू

पीड़ा को दो भागों में कर,
तुम दो बूँदों में कहाँ चले
क्यों मिलते धूल-कणों में हो,
जो मेरे दृग में सदा पले!
क्या मेरी करुणा के दो फल,
गिर पड़ने ही के लिए फले?
मन में तो थे तुम ज्वाल-रूप,
आँखों में पानी बन निकले!
इस बिन्दु-परिधि से लहराता है,
पीड़ा का सागर प्रति पल;
इस जल की नींव बना कर ही तो
खड़ा हुआ है ताज-महल;
मैं भूल गया, मेरे आँसू से
यह जग है क्यों महा विकल;
जो मेरा है दृग-बिन्दु, वही है
प्रकृति-तत्त्व का जल अविकल!

पर तुम आँसू ही रहो, बनो मत
प्रकृति - तत्त्व के प्राण भले;
यह बतला दो, पीड़ा को दो
भागों में कर तुम कहाँ चले!

* * *

चिर-विदा

आह ! यह पल्लव पुराना !
वायु-झोके में भटकने को उसे है आज जाना !

प्राण, वे स्मृतियाँ हरी
सब सूख कर पीली पड़ी हैं;
याद आता है कभी क्या
कोकिला का कण्ठ पाना ?

और विद्यु त-सा समय
चंचल विकल अति शीघ्रगामी ?
आज तेरे पतन के स्वर में
भरेगा मुक्त गाना।

क्या क्षणिक जीवन विकलता
के कणों से ही बना है !
श्वास का आना बना, क्षण एक
ही में लौट जाना ?

पीत अवगुंठन खुलेगा
आज कलिका के वदन का;
उस समय तुझको पड़ेगा
मृत्यु का चिर-पथ सजाना !

*　　*　　*

इतिवृत्त

इतिवृत्त

कार्य-कारण के सहारे घटना की क्रम-बद्धता ही इतिवृत्त है। यह क्रम-बद्धता भावना के एक छोर से दूसरे छोर तक अबाध रूप से प्रवाहित होती है और उसका पर्यवसान इतिवृत्त की अनुभूति में होता है जिस प्रकार एक सरिता एक दिशा से दूसरी दिशा में निरन्तर चलती हुई सागर की अनन्त जल-राशि में समाप्त होती है। विचारों तथा वर्णनों की संपूर्ण मनोरंजकता के साथ इतिवृत्त का शृङ्गार होता है। यदि मनोरंजन न हो तो इतिवृत्त सफल नहीं हो सकता। यह मनोरंजन चाहे कल्पना के चित्रों से हो, सूक्तियों से हो या अलंकार की योजना से। साथ ही भावना और चिन्तन उसमें इस तरह मिले रहते हैं जिस प्रकार प्रकाश और अंधकार 'झुकामुकी' में। किसीभी घटना या प्रसंग की संपूर्ण चित्रात्मकता इतिवृत्त से ही स्पष्ट होती है। यह इतिवृत्त दिनकर की यात्रा की भाँति विचारों के आकाश में भावना की उषा और कल्पना की संध्या से जुड़ा रहता है।

इतिवृत्त विचार-बिन्दु नहीं, विचार-रेखा है।

विश्ववंद्य बापू,
चट्टान
भुजा

नूरजहाँ
जीर्णगृह
बंगाल का अकाल

विश्ववंद्य बापू

क्रियाशील दृढ़ हाथ और,
मुख पर मृदुतम मुस्कान।
कठिन साधना से निकली हो,
जैसे सिद्धि महान!
एक तेज— जिसमें कितने,
सूर्यों का अभ्युत्थान।
एक मंत्र—जिसमें अभिशापों-
से निकले वरदान।
स्वर जो विश्व-ताप की सब अनुभूति लिए है साथ।
है स्वतन्त्रता के प्रदीप-सा पराधीन के हाथ॥
ये सब जैसे हैं विभूतियाँ,
जो लेकर अनुराग।
बापू! सज्जित करने आईं,
आज तुम्हारा त्याग॥
वही त्याग जो वैभव के
स्वप्नावसान का ज्ञान—

बन कर ज्योतित है जीवन के—
क्षण-क्षण में सुख मान।

विश्व-संपदा छोटी है, इतना महान् है त्याग।
पद-वंदन के लिए तुच्छ लगता है स्वर्ण-पराग॥

कर्मयोग के साधक तुम हो,
निर्बल के बल राम।
कितने कण्ठों में गूँजा है,
आज तुम्हारा नाम?
विश्ववंद्य! तुमने खोजे हैं,
निष्प्राणों में प्राण।
किया तुम्हीं ने जीवन में,
जीवन का नव-निर्माण।

छिद्रों में संगीत भरा, कर दिया उन्हें स्वर-द्वार।
तुमने लघु संकेत किया, गूँजा सारा संसार॥

बापू! तुमको पाकर युग का,
धन्य हुआ इतिहास।

आज तुम्हारा वर्तमान ही
है भविष्य की साँस।
जिस पथ पर गतिशील—
तुम्हारी छाया का आकार।
है उस पथ पर ही है स्वतन्त्रता
का मंगल-मय द्वार।
सुन पड़ता है वीर गीत सुन पड़ता है जय-नाद।
विजय सामने ही है बापू ! दो तुम आशीर्वाद॥

* * *

चट्टान

दृढ़ खड़ी, कड़ी, टेढ़ी, अखण्ड,
चट्टान अटल, जड़-सी विषण्ण।
भू-मण्डल में निर्भीक, वायु-मण्डल का शून्यान्तर बिगाड़,
झाड़ों के झुण्ड चपेट भूमि पर बैठी है बन कर पहाड़,
चुपचाप हजारों लाखों मन का पिण्ड बनी भूखण्ड फाड़,
भूकम्पों की दुर्द्धर्ष शक्तियाँ उसको क्या पाईं उखाड़?

ना, परिवर्तन को रोक—
अमर जीवन का लेकर सबल मंत्र,
चट्टान खड़ी है— आदि सृष्टि—
निर्माण देख भीषण स्वतंत्र।

वर्षाओं का आघात—बीच में खड़ी हुई निर्भीक भ्रान्त,
जैसे चामुण्डा, और प्रहारों को करते-से चर-ध्वान्त,
सब थके एक चट्टान विश्व की सुदृढ़ शक्ति सम्पूर्ण नान्त
केन्द्रित दिग्कोण चतुर्भुज-सी शासन करती सी अखिल प्रान्त

यह महाशक्ति-सौन्दर्य, विजय सौन्दर्य—
अटलता का विधान ।
मैं था मुरझाया फूल - आज,
बन गया शक्ति का बीज-ज्ञान ॥

तेरी अटूट कोरों में मेरे उलझ गये हैं नयन-कोर ।
तेरी उदारता पर चढ़ कर नभ तक फैले ये नयन-छोर ॥
तेरी दृढ़ता में आज सुदृढ़ बन गई भावना की हिलोर ।
तेरी अखण्डता देख, देखता हूँ उर मैं दृढ़ता-विभोर ॥
अब कहाँ पराजय ! कहाँ हीनता;
कहाँ क्लैव्यं है ! कहाँ हार ।
ओ शिलाखण्ड ! मैं कठिन भाग्य की-
तरह बन गया दुर्निवार ॥

हाँ, एक बात ! क्या तुझमें कोई सिसक रही अभिशाप-शप्त
वह कौन ? अहल्या ! ओ नारी ! तू कहाँ रही यों सिक्त-तप्त ।
क्या वीतराग की एक किरण, खा गई प्रेमकी किरण-सप्त ।
क्या इस कठोरता के विराग में आन्दोलित है उर विलप्त ?

किसका विराग? किसका क्रन्दन?
ओ ठहर, विश्व के व्यथित पाप!
तू आज शिला बन कर नारी के—
आँसू भी पी गया आप?

प्रात: वेला का भ्रम, मुनि का नियमित क्रम; नारी तन अनुपम,
ये तीनों जैसे एक दूसरे के विद्रोही क्रूर विषम,
यह विधि का गुरु षड्यंत्र, और निर्जन, निद्रित, एकाकी तम,
फिर एक अधम का अंध मदन, सरला नारी का यौवन-भ्रम,

किसका है यह अपराध? अरे गौतम!
चुप, अपना हृदय थाम!
यह नारी है वंचिता, दया की पात्री
निश्चय ही अकाम!!

पर टेढ़ा सा पाषाण रूप में आह! निकल ही गया शाप,
यह शिला, आज अपराधों की केवल बन कर रह गई माप,
केवल कठोरता! मौन रुदन! पत्थर के भीतर चिर विलाप,
फिर विधि-विधान यह रहा कि रवि का वह झेले प्रतिदिन प्रताप,

वर्षा भी निज आघातों से दे,
इसी शिला को तोड़-फोड़।
हिम कुंठित कर दे उस नारी के
कंकालों के जोड़ जोड़॥

कोमलता की प्रतिहिंसा! यह है मेरे सम्मुख शिला-खण्ड!
निर्बलता अपनी निष्ठुरता में बनी आज अतिशय प्रचण्ड!!
उस पर अब वर्षा के प्रचण्ड अभिशाप हिमोपल-खण्ड-खण्ड—
घन कर गल जाते हैं, अपने ही दण्डों से पा रहे दण्ड।

ऐसी यह है चट्टान आज!
अपने कण-कण में रही जाग,
इसमें न एक भी अंश रुदन है,
इसमें है परिव्याप्त आग!!
क्या इसमें परिव्याप्त आग? मुझमें भी जागी यही आग!
मैं दृढ़ हूँ-सागर उठे, देखना, निकल न आए कहीं झाग?
मैं हूँ अखण्ड, कायरता का मुझ में न कहीं भी लगा दाग़।
आकर चाहे मुझको देखे, भू-मण्डल का प्रत्येक भाग!!

मैं अपने प्रण की प्रकट शक्ति से—
चिर वर्षों तक हूँ प्रचण्ड !
दृढ़ खड़ी, कड़ी, टेढ़ी, अखण्ड ,
चट्टान अटल, जड़-सी विपण्ण !!

  

शुजा

[शाहजहाँ बीमार है। उसके चार पुत्र हैं—दारा, शुजा, मुराद और औरङ्गज़ेब। राज-सिंहासन के लिए उसके चारों पुत्रों में लड़ाई हो रही है। औरङ्गज़ेब ने दारा और मुराद को पराजित कर दिया है। वह शुजा का पीछा बङ्गाल में कर रहा है। शुजा बनारस, मुँगेर, मुर्शिदाबाद, ढाका से होता हुआ अराकान के राजा की शरण लेता है। वहाँ भी राजा से मनोमालिन्य होने के कारण शुजा अराकान के प्रशान्त वन में सदैव के लिये चला जाता है। मैं अराकान से पूछना चाहता हूँ—शुजा कहाँ है?]

मौन-राशि ओ अराकान!
अथ-हीन और इति-हीन मौन,
यह मन है, तन भी यही मौन;
निर्जनता की बहु मुखी धार,
अविदित गति से है वही मौन।
यह मौन! विश्व का व्यथित पाप
तुझ में क्यों करता है निवास?
क्या व्योम देख कर? अरे, व्योम—
में तारों का है मुक्त हास।

ये शिला-खण्ड काले, कठोर—
वर्षा के मेघों-से कुरूप।
दानव से बैठे, खड़े या कि—
अपनी भीषणता में अनूप!
ये शिला-खण्ड—मानों अनेक
पापों के फैले हैं समूह!
या नीरसता ने चिर निवास—
के लिए रचा है एक व्यूह!

ओ अराकान! यह विषम भूमि;
भय ही जिसका है द्वारपाल;
शिशुपन यौवन से है अजान
जर्जरपन ही है जन्म-काल।
सुख-सदृश न्यून हैं लघु प्रसून,
दुख के समान हैं कुश अपार,
दोनों का अनुचित विवश योग,
है जीवन का अज्ञात हार।

क्या हार? आह, वह शुजा वीर
संग्राम-भूमि में गया हार!

शुजा

यह वही शुजा है जो सदैव—
वैभव का था जीवित विहार !
यह वही शुजा है एक बार—
जिससे सज्जित थे राज-द्वार !
अब हार—(विजय की पतित राशि)
लज्जित करता है बार-बार !

जीवन के दिन क्या हैं अनेक ?
वृद्धा के सिर के श्याम केश !
जर्जरपन ही है मुक्त-द्वार ;
जिसके सम्मुख है मृत्यु देश।
यह वैभव का उज्ज्वल शरीर,
दो दिन करता है अट्टहास ;
फिर देख स्वयं निज विकृत रूप
लज्जित हो करता है प्रवास !

यह शुजा ! आह फिर वही नाम—
मचले बालक-सा बार-बार

सोई स्मृति पर लघु हाथ मार,
क्यों जगा रहा है इस प्रकार ?
वह शाहजहाँ का राज्य-काल !
मानों हिमकर का रजत हास !
लक्ष्मी का था इस्लाम-रूप
स्वर्गों का था भूपर निवास !

वे दिन क्या थे ! यौवन विलास—
संध्या-बादल-सा था नवीन !
वह रास-रंग—वह रास-रंग—
यौवन था यौवन में विलीन !
धन भूल गया था व्यक्ति-भेद,
उसकी गति का था हुआ नाश ;
था स्वर्ण-रजत का एक मूल्य,
रत्नों में पीड़ित था प्रकाश !

रमणी के कण्ठों पर स-रत्न,
सोया करता था बाहु-पाश ;

उच्छृङ्खलता भी थी प्रमत्त,
चिन्ता जीवन से थी हताश।
'शासित के जी हलके सदैव—
थे, शासक पर था राज्य-भार!
उसकी जागृति से सभी काल,
निद्रित रहता था दुराचार।'

उस दिन वह केवल था विनोद,
जब नीली यमुना के समीप;
संचित था उत्सुक जन-समूह,
(बुझते जाते थे नभ-प्रदीप)।
काले बादल-से दो प्रमत्त,
हाथी लड़ते थे बार-बार;
विद्युत-सा उद्धत चपल शब्द,
सूचित कर देता था प्रहार।

अपनी आँखों में भरे हर्ष—
उत्सुकता की चंचल हिलोर;

नृप शाहजहाँ रवि-रश्मि-युक्त—
लो, देख रहा था उसी ओर।
सम्मुख थे उसके राज-पुत्र,
चंचल घोड़ों पर थे सवार;
आश्चर्य उमङ्गों का सदैव—
दृग में बढ़ता था तीव्र ज्वार।

औरङ्गज़ेब की ओर एक—
गज दौड़ा बन साकार क्रोध
पर थी उसकी तलवार तीव्र,
करने वाली चंचल विरोध
जीवन का अब अस्थिर प्रवाह,
दो क्षण तक ही था रहा शेष;
पर वाह शुजा! रे शुजा वीर!
तेरी चंचलता थी विशेष!

तूने विद्युत बन कर सवेग,
विद्युतत्तर कर भाला विशाल;

उस मृत्यु-रूप गज के स-रौद्र,
मस्तक पर छोड़ा था कराल।
गज घूमा, तू औरङ्गज़ेब—
को बचा, हो गया अमर वीर।
मैं तुझे खोजता हूँ अलक्ष्य,
अब अराकान में हो अधीर।

था शाहजहाँ बीमार, और—
दारा बैठा था नमित माथ;
जिन पर आश्रित था राज्य-भार,
वे काँप रहे थे आज हाथ।
दरबार होगया नियम-हीन,
प्रातः-दर्शन भी था न आह;
रवि-शाहजहाँ से हुआ शून्य,
प्रति दिन प्राची सा ख्वाबगाह।

गत तीस वर्ष का राज्य-काल,
विस्तृत था स्वप्नों के समान;

जिनमें निद्रित था वन प्रशान्त,
इस जीवन का अस्तित्व ज्ञान।
'शाही - बुलन्द - इक़बाल' युक्त,
दारा का शासन था स-हास;
पर शाहजहाँ का मृत्यु - कष्ट,
करता मुख से मुख पर प्रवास।

चिन्ता-निर्मित नत व्यथित शीश,
झुकते थे दिन में अयुत वार;
मृदु वायु सह रही थी अनन्त,
आशीषों का अविराम भार।
जिस तन पर मणियों का प्रकाश,
अपना जीवन करता व्यतीत,
अब वह तन है कितना मलीन!
कितना निष्ठुर है यह अतीत!

जब शाहजहाँ ने एक वार,
सोचा जीवन का निकट अन्त;

दृग से दो आँसू गिरे, और—
उनमें आकांक्षा थी अनन्त—
थे जीवन के दो दिवस शेष,
जिनमें होंगी स्मृतियाँ अतीत;
प्रिय ताजमहल के पास क्यों न,
हों प्रेयसि-चिन्तन में व्यतीत ?

कुछ दूर, आगरे में अनूप,
संचित है स्मृति का अश्रु-बिन्दु;
वह ताज—(वेदना की विभूति)
अंकित है भू पर पूर्ण इन्दु।
यह शाहजहाँ है एक व्यक्ति,
जिसने इतना तो किया काम;
दे दिया विरह को एक रूप
है 'ताज' उसी का व्यथित नाम।

पर—है प्रेयसि की स्मृति पवित्र,
कितनी कोमल ! कितनी अनूप;

संकेत

फिर शाहजहाँ ने बन कठोर
क्यों दिया उसे पाषाण-रूप ?
यदि फूलों से निर्मित अम्लान,
यह ताजमहल होता सन्हास ?
तब होता स्मृति का उचित चिह्न ;
मैं क्यों रहता इतना उदास ?

तारों की चितवन के समान ;
था शाहजहाँ अपलक अधीर,
यमुना की लहरों से समोद ;
क्रीड़ा करता था मृदु समीर।
कितने भावों को कर विलीन
छोटे से दृग के बीच आज,
दिल्ली का स्वामी बन मलीन,
था देख रहा निस्तब्ध ताज।

वह ताज ! देख कर उसे हाय ;
उठता था दृग में निकल नीर ,

मुमताज़ ! कहाँ पाषाण - भार,
है कहाँ तुम्हारा मृदु - शरीर !
है कहाँ तुम्हारी मदिर दृष्टि,
जिसमें निमग्न था अधर - पान
अधरों में संचित था अनूप
वीणा - सा कोमल मधुर गान।

था मधुर गान !···अः, वह मुराद,
औरंगज़ेब के सहित आज
है शुजा - शुजा भी है स-ओज;
सजने को भीषण युद्ध - साज।
दिल्ली का सिंहासन विशाल,
है आज युद्ध का पुरस्कार;
जीवन होगा जय का स्वरूप,
क्या मृत्यु रूप होगी न हार ?

नृप शाहजहाँ की हीन शक्ति,
बन गई सुतों का बल अपार;

दारा, मुराद, औरंगज़ेब ;
थे मानो जीवित अहंकार।
सतलज की लहरें हुईं क्षुब्ध ,
जब उठा भयंकर युद्ध-नाद ;
प्रतिबिम्बित था जल में अनन्त—
सेना-समूह—भीषण विषाद।

दारा का वैभव-पूर्ण युद्ध ,
वृद्धा-जीवन सा था अशक्त ;
(धन का सेवक था युद्ध-वाद्य !)
बह गया स्वर्ण के साथ रक्त !
बह दिल्ली से लाहौर, और—
मुलतान सिन्ध से गया कच्छ
कलुषित-सा होने लगा नित्य ,
उसकी जय का आकार स्वच्छ !

दादर में दारा की विभूति—
का द्रुत आँसू में था प्रवाह ;

नादिरा - हृदय - संगिनी आज,
थी मृत्यु - संगिनी आह! आह!
दारा के उर पर अश्रु और
मोती बिखरे थे बन अधीर,
सिसकियों-भरे चुम्बन समेत,
था मृतक नादिरा का शरीर!!

बन्दी था अब वह राज - पुत्र,
भिक्षुक - स्वरूप हो गया ईश!
क्षण एक हुआ चीत्कार रुद्ध;
फिर गिरा रक्त से सना शीश
वह शीश देख औरंगज़ेब—
हँस कर रोया था बहुत देर,
मानो निर्दयता ने स - भूल
थोड़ी सी करुणा दी बिखेर।

भोला मुराद—(मदिरा-प्रवीण)—
सोया था होकर शस्त्र - हीन,

चरणों को अलसाई अनूप,
थी दवा रही बाँदी नवीन,
उस समय दुष्ट औरंगज़ेब—
ने भेजा था क्यों शेख़ मीर ?
जिससे सहायता-हीन सुप्त,
भाई का बन्दी हो शरीर।

अः शुजाः ! और तुम ! कहो वीर !
बङ्गाल तुम्हारा था प्रवास;
सुख का दिन—सुख की रात शान्त,
यह सत्रह वर्षों का निवास !
उस राजमहल की शान्त वायु
पा शाहजहाँ का समाचार,
निर्बल रोगी सी हुई क्षुब्ध;
आकांक्षा का हिल उठा तार।

तू बढ़ा हाथ में ले सगर्व,
शासन का गौरव-पूर्ण भार,

तेरा गौरव था एक चित्र—
तेरा साहस था चित्रकार!
थी शत्रु-वाहिनी अति प्रमत्त!
तू विमुख हुआ था बार-बार,
मानो दृढ़ तट पर शक्ति-हीन
लहरों का था असफल प्रहार!

औरंगजेब से हुआ युद्ध,
जिसमें थी गज-सेना अपार;
विजयी बन कर भी कई बार;
तुझ को क्यों स्वीकृत हुई हार?
ढाका से भागा अराकान;
खोकर अपना विजयी स्वभाव,
कितनी नदियाँ कीं शीघ्र पार,
आशाओं ही की बना नाव।

गौरव-रक्षण के हेतु वीर!
तूने अपनाया यवन प्रदेश!

रक्षित है क्या अब भी महान् !
तेरा वह विक्रम वीर वेश ?
तेरे वैभव का मृदु विलास ;
इस अराकान से था अपार ,
इसके पर्वत से भी महान ;
तेरे सुख का था मधुर भार ।

इसमें विभीषिका भी सदैव ,
रहती है हो-होकर सभीत ;
तेरे समीप मुस्कान मंजु ,
अधरों में होती थी व्यतीत ।
तरु तोड़ तोड़ कर यहाँ नित्य ,
झंझा करता है अट्टहास !
तेरे शरीर में नव सुगंधि ,
लिपटी सी करती थी निवास

ले अपने वैभव का शरीर ,
आया है तू इस भाँति श्रान्त ;

एकान्त भूमि में इस प्रकार,
तू ही है उजड़ा एक प्रान्त!
ओ अराकान के शून्य प्रान्त!
तेरे विशाल तन में प्रशान्त;
वह शुजा हृदय की भाँति आज,
क्या धड़क रहा है वन अशान्त?

  

नूरजहाँ

हता है भारत तेरे गौरव की एक कहानी,
भव भी बलिहार हुआ था तेरे मुख का पानी,
रजहाँ! तेरा सिंहासन था कितना अभिमानी?
री इच्छा ही बनती थी जहाँगीर की रानी!

फूलों के यौवन से सज्जित—
केश-राशि थी खोली,
तन से तो तू युवती थी पर—
मन से कितनी भोली??

एक स्वप्न था कभी आगरे ने विस्मित हो देखा
मुग़लों के भाग्यों में थी बस, एक सुनहली रेखा,
उस रेखा से ही सज्जित तेरी मृदु आकृति आई
जिस पर छवि विभूति सोई थी यौवन में अलसाई,

सिंहासन के मणियों ने थी—
शोभा वही निहारी,
जिसके लिए सलीम—
शाहज़ादे से बना भिखारी।

कान्तिमती थी, मानो शशि-किरणों पर तू सोती थी,
राजमहल की सरस सीप की तू जीवित मोती थी,
वह मोती का प्यार—चुप रहो ऐ सलीम, मत बोलो !
इस सौन्दर्य-सुधा में मत विषमयी वासना घोलो !

वह मोती का प्यार-सजा है,
जिसमें छवि का पानी,
कैसे रक्षित होगा ? यह—
दुनिया तो है दीवानी !

कोमल छवि का मोल ! वासना ही के उपहारों में—
और प्रेम का मोल रत्न के—हीरों के हारों में—
करता है संसार, यही है उसकी रीति निराली,
अन्धकार से तारों का विक्रय करती निशि काली,

यह न स्थान है जहाँ प्रेम का—
मूल्य लगाया जावे,
नूरजहाँ ! तेरे मन का सौदा—
सुलझाया जावे !

जहाँगीर क्या समझ सका था तेरे मन की बातें !
तेरे साथ उसे भाती थीं बस चाँदी की रातें !

सारी रात देखते थे तारे तेरे दृग-तारे
प्रातः तेरे आँसू बन कर बिखर गये थे सारे,

इस रहस्य ही में करुणा की,
थी अव्यक्त कहानी,
कितने हृदय-प्रदेशों की थी,
एक साथ तू रानी।
इन आँखों में देखी जाती—
थी मदिरा की लाली
स्वप्न बनी तू और साथ ही
स्वप्न देखने वाली।

सदियों के सागर में डूबी तेरी गौरव गाथा,
उफ्, तेरे चरणों पर था, किस किस प्रेमी का माथा!
जगत देखता रहा, फूल वह तोड़ ले गया माली!
हाथ बढ़े ही रहे, गिर पड़ी वह यौवन की प्याली!

नूर-रहित हो गया जहाँ,
तेरे जग से जाने से!
नूरजहाँ! तू जाग जाग फिर,
मेरे इस गाने से!!

जीर्ण गृह

लिए कितनी स्मृतियों का कोष
भिखारी-सा जर्जर तन-भार
खड़े हो ओ मेरे गृह आज!
किसे करने को भूला प्यार?

सुलाए कितने वर्ष अतीत
गोद में खड़े हुए दिन रात,
बुलाए वातायन से नित्य
झाँकने वाले बाल-प्रभात

रात की काली चादर ओढ़
निकलते थे तारे चुपचाप
देखते थे वे चारों ओर
भयानक अंधकार का पाप

देखते थे तुम भी उस काल
हृदय में कर सुस्नेह-प्रकाश
दीप्तिमय छिद्र-नेत्र से अचल
उन्हीं नक्षत्रों का आकाश

यही तो है जीवन की हार
यही तो दो दिन का संसार

यही तो दो दिन का संसार
खिलाता है कितने ही फूल
और दो दिन के भूखे भ्रमर
भूलते हैं अपनापन भूल

तुम्हारा सुन्दर उपवन और
तुम्हारा सुन्दर रूप विशाल
आज है देख रहा संसार
तुम्हें रोगी का नत कंकाल

वायु आकर छू जाता शीघ्र
देखते हो तुम उसका व्यंग
कभी सौरभ भारों से थका
सदा लिपटा रहता था अंग

बने हो अब अतीत के बिन्दु
बने हो अवनी पर निरुपाय

बने स्थिर, सकरुण स्वप्नाकार
लिए अपना अविदित अभिप्राय
न गिरना, मत गिरना ए सुनो !
सुरक्षित रखना अपना द्वार
कभी आऊँगा फिर इस ओर
आँख में भर आँसू दो चार।

  

बंगाल का अकाल

मिट्टी के मस्तक पर हरितांकुर में सुख के लेख—
साहस के ये लेख—लिखे हैं किसने ? जिनको देख—
रवि की किरणें अपने उज्ज्वल रँग में भाव-विभोर—
आ जाती हैं नभ से इस गीली मिट्टी की ओर।
रँगती हैं वे अपने रँग से यह जीवन की रेख,
और चमक उठते हैं मिट्टी के मस्तक के लेख।

पर मानव के प्राणों पर यह कैसी मृण्मय कोर !
जिसमें केवल ज्वाला है, ज्वाला है चारों ओर।
एक यंत्रणा पागल-सी रखती है कितने रूप।
यहाँ-वहाँ चलती-फिरती सी है वर्षा की धूप।
कभी वेदना की विद्युत, आँसू की कभी हिलोर,
ऐसी है यह मानव के प्राणों पर मृण्मय कोर।

मानव के भीतर दानव की यह कैसी तसवीर ?
बिजली-सी चुभ कर बैठी है जलद-हृदय को चीर,
आत्मा के ऊपर बैठा है भूखा एक शरीर,
हृदय प्रेम से नहीं भूख से होता आज अधीर,

विश्वंभरा प्रकृति ! तेरी आँखों में कितना नीर !
जिससे धुलकर हो पवित्र मानव की यह तसवीर।

जाग रहे हैं प्राण किन्तु यह देह बनी कंकाल,
आशा, आशा, आशा केवल आशा ही का जाल ?
माँ की आँखों के वसंत में घिरता वर्षा काल।
जहाँ मृत्यु-घन में खो जाते इन्द्रधनुष-से लाल !
यह है अपना देश, यही है अपना प्रिय बंगाल
जाग रहे हैं जहाँ प्राण, पर देह बनी कंकाल !

ललित कला की भूमि, भूख की भूमि बने इस बार ?
कवि रवीन्द्र की दिव्य साधना का हो यह आभार ?
मानवता का मानव के हाथों से यह सत्कार ?
क्रय-विक्रय के काँटों पर हो रूप और शृंगार ?
किन्तु भस्म में भी जाग्रत हैं कहीं कहीं अंगार
ललित कला की भूमि खोज लेगी अपना उद्धार।

जीवन में हो नवोन्मेश, उत्साह उठे फिर जाग
एक फूँक से फिर चिनगारी हो सकती है आग,
हृदय-स्पंदन स्वस्थ साँस हो सजग, प्राण द्युतिमान
फूल एक हो किन्तु, उसी में छाया हो उद्यान।

त्याग छिपाये हो उर की प्राची का मृदु अनुराग,
जीवन के लघु क्षण में भी उत्साह उठे फिर जाग।

यह है उज्ज्वल पृष्ठ जहाँ जीवन का नव निर्माण—
छोटा सा निर्माण, जहाँ रेखा में हैं लघु प्राण।
इतने लघु प्राणों में भी साहस का पारावार—
जाग रहा है, जिसमें लहरें ही बन कर पतवार
ले जाती हैं जीवन को सीमा के भी उस पार,
जीवन का यह पृष्ठ न लौटे कभी दूसरी बार!

मिट्टी के मस्तक पर हरितांकुर में सुख के लेख
बार बार कहते हैं—हम तो पृथ्वी का तम देख,
बढ़ते ही जाते हैं अपने प्रिय प्रकाश की ओर
चाहे आँधी या वर्षा की बूँदें दें झकझोर।
मानव के जीवन में ऐसी ही बन जाये रेख;
जैसे मिट्टी के मस्तक पर हरितांकुर के लेख।

  

र ह स्य वा द

रहस्यवाद

रहस्यवाद मानव-जीवन में विश्वात्मा की अनुभूति है। मनुष्य अपनी परिस्थितियों से उठ कर किसी श्रेष्ठ और अलौकिक शक्ति का अपने जीवन में आवाहन करता है और अपने आत्म-समर्पण में उससे एकाकार हो जाता है। यह सत्ता संपूर्णतः पवित्र और कल्याणकर है। हम इसे चाहे राम कहें, कृष्ण कहें, ब्रह्म कहें, हक़ कहें या अचिन्त्य आनन्दमय प्राकृतिक शक्ति के नाम से पुकारें। जो हो, वह मानवता का एक चरम लक्ष्य-विन्दु है जिसमें विशुद्ध जीवन की शक्तिमयी अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं। इन अनुभूतियों के सहारे वह युग-युग की सभ्यताओं के आघातों को सहता हुआ दृढ़तापूर्वक अपने विकास-पथ पर अग्रसर होता है। यही रहस्यवाद का लक्ष्य है, यद्यपि हिंदी में इसे अनुभवहीन अनेक कवियों ने अपनी ना-समझी से भ्रष्ट कर दिया है। यह अनुभूति मानवता के आलोक का वह प्रकाश-स्तंभ है जिसकी किरणें भविष्य जीवन के

सहस्रों योजनों तक भी प्रकाश फेंकती हैं और मनुष्य चाहे तो अपने निश्छल जीवन को शांति और विश्व-प्रेम के शक्तिशाली यान पर बैठकर पार कर सकता है। इस साधना में कवि को भक्त होने की आवश्यकता नहीं और न उसको छापा तिलक लगाने की अपेक्षा है। उसे केवल अपने हृदय में एकांतिक प्रेम की पवित्रता घनीभूत करते हुए जीवन को पवित्र करने वाली सत्ता की ओर स्वाभाविक रूप से अग्रसर होने की आवश्यकता है। इसमें कृत्रिमता का आभास भी न हो। यह हृदय की स्वाभाविक चेष्टा है, जो अपनी गति में उस ओर चली जाय, जिस प्रकार ढालू ज़मीन पर पानी पड़ कर उसी दिशा में चला जाता है। मानवता का यह अनुभूति-सम्पन्न इतिहास इसी प्रकार आगे चलता जायगा और जिस प्रकार सहस्रों वर्ष पूर्व वेद की ऋचायों में यह रहस्यवाद था, उसी प्रकार आज से सहस्रों वर्ष बाद भी किसी दूसरे रूप में यह रहस्यवाद रहेगा। इसके साधन भिन्न होंगे, इसकी भाषा भिन्न होगी किंतु इसकी भावना भिन्न न होगी।

साधना संगीत

किरण-कण

प्रार्थना

प्रतीक्षा

परिचय

यह तुम्हारा हास आया

स्वागत

सहारा चाहता हूँ

यह बात क्या तुम जानते हो ?

गाओ मधुप्रिय गान

तारे नभ में अंकुरित हुए

तुम न आए

मै क्या गाऊँ

निवेदन

साधना-संगीत

आज मेरी गति, तुम्हारी आरती बन जाय!

आरती 'घूमे' कि खिंचता जाय रंजित क्षितिज-घेरा,
धूम-सा जल कर भटकता उड़ चले सारा अँधेरा,
हो शिखा स्थिर प्राण के प्रण की अचल निष्कंप रेखा,
हृदय में ज्वाला, हँसी में दीप्ति की हो चित्र-लेखा,

श्वास ही मेरी विनय की भारती बन जाय!
आज मेरी गति तुम्हारी आरती बन जाय!

यह हँसी मन्दिर बने, मुस्कान-क्षण हो द्वार मेरे,
मैं मिलूँ या तुम मिलो, ये मिलन-पूजा-हार मेरे!
आज बंधन ही बनेंगे, मुक्ति के अधिकार मेरे!
क्यों न मुझमें अवतरित होकर रहो अवतार! मेरे?

प्राण-वंशी बार-बार पुकारती बन जाय!
आज मेरी गति तुम्हारी आरती बन जाय!

किरण-कण

एक दीपक-किरण-कण हूँ।
धूम्र जिसके क्रोड़ में है, उस अनल का हाथ हूँ मैं;
नव-प्रभा लेकर चला हूँ, पर जलन के साथ हूँ मैं;
सिद्धि पाकर भी तपस्या-साधना का ज्वलित क्षण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।

व्योम के उर में अगाध भरा हुआ है जो अँधेरा
और जिसने विश्व को दो बार क्या, सौ बार घेरा,
उस तिमिर का नाश करने के लिए मैं अखिल प्रण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।

शलभ को अमरत्व देकर प्रेम पर मरना सिखाया,
सूर्य का सन्देश लेकर, रात्रि के उर में समाया,
पर तुम्हारा स्नेह खोकर भी तुम्हारी ही शरण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।

प्रार्थना

मेरे जीवन में एक वार
तुम देखो तो अनुपम स्वरूप ;
मैं तुममें प्रतिविम्बित होऊँ ;
तुम मुझमें होना ओ अमूप !

राका-शशि अपनी रश्मि-माल
जब रजनी को पहिनाता हो
अथवा जब फूलों के तन से
सकुची सुगन्धि का नाता हो,

जब विमल ऊर्मि में लघु बुद्बुद्
उल्लास-पीन लहराता हो,
जब तरु से लतिका का अन्तर
मधु ऋतु में कम हो जाता हो,

उस समय हँसो तो बरस पड़े,
ओसों में विश्वों का स्वरूप ;
मैं तुम में प्रतिविम्बित होऊँ,
तुम मुझ में होना ओ अनूप !

प्रतीक्षा

इस भाँति न छिप कर आओ
अन्तिम यही प्रतीक्षा मेरी,
इसे भूल मत जाओ। इस भाँति०
रजनी के विस्तृत नभ को जब मैं दृग में भर लेता,
एक एक तारे को कितने भाव-युक्त कर देता!
उसी समय खद्योत एक आता वातायन द्वारा,
मैं क्या समझूँ, मुझे मिला उज्ज्वल संकेत तुम्हारा!
प्रियतम! मेरी सन्तम निशा ही को
शशि-किरण बनाओ। इस भाँति०

उपवन फूला, पर उसमें बोलो शान्ति कहाँ है?
सुमन खिले, मुरझाये, सूखे, गिरे वसन्त यहाँ है?
नहीं, मृत्यु ने यहाँ परिधि में बाँधा है जीवन को,
सुख तो सेवक बन रक्षित रखता है दुःख के धनको।
प्रियतम! शाश्वत जीवन बन,
में तो आज समाओ। इस भाँति०

परिचय

मैं तुम्हारे नूपुरों का हास।
चरण में लिपटा हुआ,
करता रहूँ चिर वास।
मैं तुम्हारी मौन गति में,
भर रहा हूँ राग;
बोलता हूँ यह जताने,
हूँ तुम्हारे पास

चरण-कम्पन का तुम्हारे
हृदय में मृदु भाव—
कर रहा हूँ मैं तुम्हारे
कण्ठ का अभ्यास।

हूँ तुम्हारे आगमन का
पूर्व लघु सन्देश;
गति रुकी, तो मौन हूँ,
गति में अखिल उल्लास।

प्रतीक्षा

इस भाँति न छिप कर आओ
अन्तिम यही प्रतीक्षा मेरी,
इसे भूल मत जाओ। इस भाँति०
रजनी के विस्तृत नभ को जब मैं दृग में भर लेता,
एक एक तारे को कितने भाव-युक्त कर देता!
उसी समय खद्योत एक आता वातायन द्वारा,
मैं क्या समझूँ, मुझे मिला उज्ज्वल संकेत तुम्हारा!
प्रियतम! मेरी सन्तम निशा ही को
शशि-किरण बनाओ। इस भाँति०

वह उपवन फूला, पर उसमें बोलो शान्ति कहाँ है?
सुमन खिले, मुरझाये, सूखे, गिरे वसन्त यहाँ है?
नहीं, मृत्यु ने यहाँ परिधि में बाँधा है जीवन को,
सुख तो सेवक बन रक्षित रखता है दुःख के धनको।
प्रियतम! शाश्वत जीवन बन,
मन में तो आज समाओ। इस भाँति०

परिचय

मैं तुम्हारे नूपुरों का हास।
चरण में लिपटा हुआ,
करता रहूँ चिर वास।

मैं तुम्हारी मौन गति में,
भर रहा हूँ राग;
बोलता हूँ यह जताने,
हूँ तुम्हारे पास

चरण-कम्पन का तुम्हारे
हृदय में मृदु भाव—
कर रहा हूँ मैं तुम्हारे
कण्ठ का अभ्यास।

हूँ तुम्हारे आगमन का
पूर्व लघु सन्देश;
गति रुकी, तो मौन हूँ,
गति में अखिल उल्लास।

मैं चरण ही में रहूँ।
स्वर के सहित सविलास,
गति तुम्हारी ही बने
मेरा अटल विश्वास

  

यह तुम्हारा हास आया

यह तुम्हारा हास आया !
इन फटे-से बादलों में
कौन - सा मधुमास आया ?

आँख से विचलित व्यथा के
दो बड़े आँसू बहे हैं,
सिसकियों में वेदना के व्यूह-
ये कैसे रहे हैं ?
एक उज्ज्वल तीर - सा रवि—
रश्मि का उल्लास आया। यह...

आह! वह कोकिल न जाने—
क्यों हृदय को चीर रोयी ?
एक प्रतिध्वनि-सी हृदय में,
क्षीण हो हो हाय! सोयी!
किन्तु इससे आज मैं—
कितना तुम्हारे पास आया !

यह तुम्हारा हास आया !

स्वागत

इस जीवन में वे आये !
यह नीरस नभ है वृद्ध किन्तु
है उषा-बाल उसके समीप ;
रजनी मलीन है, सजे किन्तु
आशाओं के कितने प्रदीप।
विस्तृत सागर के अश्रु-पूर्ण
उर में संचित है एक द्वीप ,
स्वाति ! शिशु मोती हृदय रूप
ज्योतित करता है सरस सीप।
इस भाँति न जाने किस पथ से
वे मुझमें आज समाये। इस...

मेरी निद्रा का अंधकार
नव स्वर्ण-स्वप्न का बना दास ,
कुशला कोकिल का कंठ किसी
कूजन से करता है विलास।

मेरी तन्त्री के तार तार
ले रहे रागनी-रूप स्वास,
मेरी छवि-कलिका में प्रशान्त
छिप कर सोता है नव विकास।
सुमनों की उँगली से वसंत—
ने जैसे वृक्ष जगाये।
इस जीवन में वे आये

* * *

सहारा चाहता हूँ

मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूँ।

जानता हूँ इस जगत में,
फूल की है आयु कितनी;
और यौवन की उभरती,
साँस में है वायु कितनी;

इसलिए आकाश का विस्तार सारा चाहता हूँ।
मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूँ।

प्रश्न - चिह्नों में उठी हैं,
भाग्य - सागर की हिलोरें;
सांध्य नभ-सी शान्त होंगी,
क्या नयन की नमित कोरें?

जो द्रवित कर दे तुम्हें, वह अश्रु-धारा चाहता हूँ।
मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूँ।

जोड़ कर कण-कण कृपण,
आकाश ने तारे सजाए;

जो कि उज्ज्वल हैं सही पर,
क्या किसी के काम आए ?

प्राण, मैं तो मार्ग-दर्शक एक तारा चाहता हूँ !
मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूँ ।

यह उठा कैसा प्रभंजन !
जुड़ गईं जैसे दिशाएँ ;
एक तरणी, एक नाविक,
और इतनी आपदाएँ ;

क्या कहूँ, मँझधार में ही मैं किनारा चाहता हूँ ।
मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूँ ।





गाओ मधु प्रिय गान !

सुनने को यह नभ नीरव है, गाओ मधु-प्रिय गान ।

नव तरु ने अपना हृदय आज
पल्लव-पल्लव कर दिया आह !
जिससे वह छू ले एक बार
सु-मधुर सु-राग का सु-प्रवाह;
यह अनिल बना है अंगहीन
छिप कर छूने की हुई चाह,
करने को नव छवि प्रतिबिम्बित
यह सरिता है उज्ज्वल अथाह;
मेरे जीवन के शतदल में
भर दो सुरभि महान ।
गाओ मधुप्रिय गान !

  

तारे नभ में अंकुरित हुए !

जिस भाँति तुम्हारे विविध रूप मेरे मन में संचरित हुए।

यह आभा है क्या कुछ मलीन ?
अपने संकोचन में विलीन
पर दुग्ध-धार से किरण-गान मुझ से मिल कर हैं स्वरित हुए

देखो, इतना है लघु विकास,
मेरे जीवन के आसपास।
पर सघन अँधेरे के समान ही दूर दैन्य, दुख, दुरित हुए।
तारे नभ में अंकुरित हुए।

  

तुम न आए

भूल कर भी तुम न आए!
आँख के आँसू उमड़ कर, आँख में ही हैं समाए।

सुरभि से शृंगार कर वह—
वायु प्रिय-पथ में समाई;
अरुण कलियों ने स्वयं सज,
आरती उर में सजाई,
'बना कर पल्लवों ने नवल वंदनवार छाये॥

हूँ असीम, ससीम सुख से,
सींच कर संसार सारा;
साँस की विरुदावली से,
गा रहा हूँ यश तुम्हारा,
किंतु तुम को कौन स्वर, स्वरकार! मेरे पास लाए!
भूल कर भी तुम न आए!

* * *

मैं क्या गाऊँ

प्रिय! तुम भूले, मैं क्या गाऊँ!
जिस ध्वनि में तुम बसे उसे जग के कण कण में क्या
बिखराऊँ!

शब्दों के अधखुले द्वार से,
अभिलाषाएँ निकल न पातीं!
उच्छ्वासों के लघु लघु पथ पर,
इच्छाएँ चल कर थक जातीं!
आह, स्वप्न-संकेतों से मैं,
कैसे तुमको पास बुलाऊँ! प्रिय!...

जुही सुरभि की एक लहर से,
निशा बह गई डूबे तारे,
अश्रु-बिन्दु में डूब डूब कर,
दृग-तारे ये कभी न हारे,
अपने दुख की इस जागृति में,
तुम्हें जगाकर, क्या सुख पाऊँ!
प्रिय! तुम भूले मैं क्या गाऊँ!

निवेदन

फूलों की अधखुली आँख!
मार्ग देख मेरे प्रियतम का,
देख देख नीला आकाश।
जब तक वे न यहाँ आवें,
खुलने का मत कर व्यर्थ प्रयास॥

सागर की गतिवती तरंग!
ले उसास मत, तट पर जाकर,
चुप हो जाओ चंचल बाल!
मेरे प्रियतम के आने की
ध्वनि से देना अपनी ताल॥

ओसों के बिखरे वैभव!
फैले हो अवनी पर, शासन—
करने का यह अनुपम ढंग।
तुमसे भी तो कोमल है,
मेरे प्रियतम का उज्ज्वल अंग॥

मत उड़ना ऐ, अश्रु- विन्दु बन,
करना उन फूलों में वास।
मेरा अनुपम धन आ जावे
जब तक इस निर्धन के पास॥

तरुवर के ओ पीले पात!
मत गिरना, मेरे प्रियतम को,
तो आ जाने दो इस वार।
आने पर उनके चरणों पर,
गिर कर हो जाना बलिहार॥

ओ समीर के मन्दोच्छ्वास!
फूलों की प्याली में तब तक,
मत भरना छवि-सुधा अपार।
जब तक प्रियतम की पद-ध्वनियाँ,
पहुँच न जावें मेरे द्वार॥

जल-कुबेर ऐ काले मेघ!
प्रिय की विरह-ज्वाल दिखला कर,
क्यों बरसाते हो जल-धार।

वसुधा के वैभव ही में तो,
करते हो अपना विस्तार ॥
तब तक मौन रहो जब तक,
मेरे आँसू का पारावार ।
मिल जावे तुमसे करने को;
प्रियतम के पद का शृंगार ॥
ओ मेरी तंत्री के नाद !
मत गूँजो, मेरी उँगली से
मत बोलो ओ प्राणाधार !
मेरे मन में बस जाने दो,
पहले मेरा प्रिय स्वरकार ॥

  